इवान तुर्गेनिव

बेझिन चरागाह

१८५२ में 'शिकारी के शब्दचित्र' नामक पुस्तक प्रकाशित हुई। इसके लेखक इवान तुर्गेनेव का नाम तब बहुत कम लोगों ने ही सुना था। रूसी साहित्य में यह पहली ऐसी कृति थी, जिसमें मध्य रूस के मौलिक सौंदर्य—रई के खेतों, ज़मीन से सटे गांवों, गंदी सरायों, उजले वनों, मंथर नदियों, खेतों के बीच चली गई खुली सड़कों की छवि उतारी गई। इन कहानियों के अधिकांश नायक भूदास किसान हैं—अनपढ़, किंतु सयाने, प्रतिभावान और साफ़ मन के लोग। इस पुस्तक ने लेखक की कीर्ति फैलाई। इन कहानियों में एक थी 'बेझिन चरागाह', जिसमें लेखक ने किसान बच्चों का, जन किंवदंतियों का काव्यमय वर्णन किया है।

इस कहानी के अलावा 'शिकारी के शब्दचित्रों' की कुछ और कहानियों—'बिर्यूक', 'ल्गोव' तथा 'गायक'—को भी बाल-साहित्य में स्थान मिला। तुर्गेनेव की कहानी 'मुमू' बाल-साहित्य की एक बेजोड़ रचना है। यह एक कुत्ते की कहानी है, जिसे उसके मालिक भूदास जमादार गेरासिम को मालकिन के भोंडे हुक्म पर डुबाना पड़ा।

लेव तोलस्तोय के अनुरोध पर तुर्गेनेव ने 'बाल-विश्राम' पत्रिका के लिए 'बटेर' कहानी लिखी। उन्होंने शार्ल पेर्रो की बाल-कथाओं का भी फ़्रांसीसी से रूसी में अनुवाद किया और उनके लिए भूमिका लिखी।

इवान सेर्गेयेविच तुर्गेनेव का जन्म १८१८ में हुआ और मृत्यु १८८३ में।
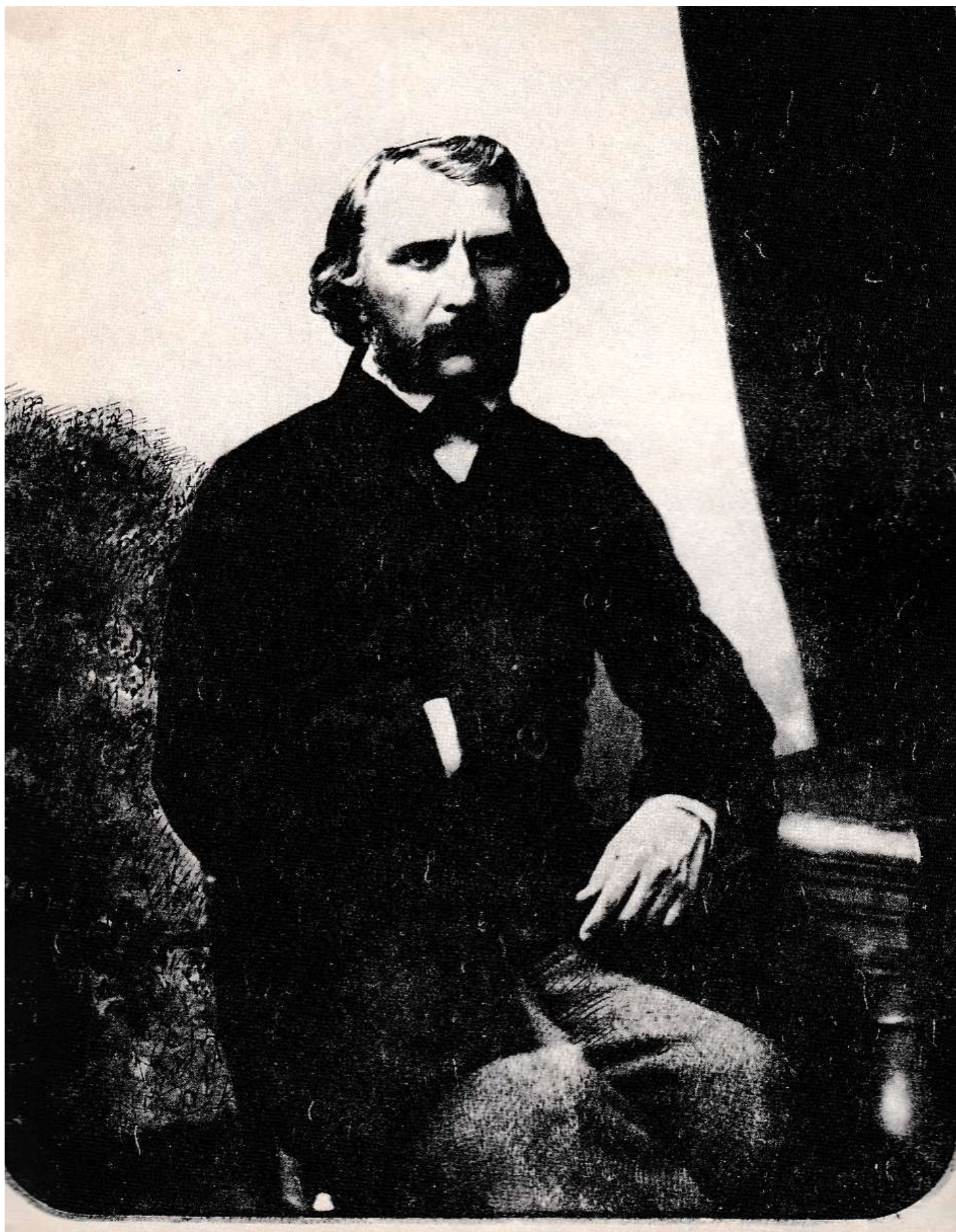
जुलाई का एक सुहावना दिन था। ऐसे दिन मौसम के उतार-चढ़ाव बीत चुकने पर ही अवतरित होते हैं। सुबह तड़के से ही आकाश स्वच्छ होता है। ऊषा आग सी नहीं दमक उठती, बस एक कोमल गुलाबी प्रकाश चारों ओर फैल जाता है। न तो दमघोट सूखे के दिनों की भांति अग्निल, लाल-भभूका और न ही झंझा की पूर्ववेला जैसा धूमिल लौहित, अपितु दिव्य आभामय उज्ज्वल सूर्य बादल की लंबी, पतली पट्टी तले से हौले से उदय होता है, ताज़गी छिटकाता है और फिर उसकी लाल-नीली धुंध में समा जाता है। बादल की पट्टी के ऊपरी किनारे पर प्रकाश-सर्प बल खाते हैं, चांदी के वर्क से चमचमाते हैं... और फिर किरणें इठलाती हैं, आह्लादित प्रकाश पुंज भव्य पंखों पर ऊपर उठने लगता है। प्रायः दोपहर के समय आकाश में खूब ऊंचे गोल-गोल बादल छा जाते हैं—सुनहरे-सुरमई और दूधिया गोट में टंके। प्लावित नदी के वक्ष पर छितरे वे थिर द्वीपों से लगते हैं, गहरी पारदर्शी नीलवर्ण जलराशि का

असीम विस्तार इन्हें पखारता है। दूर, आकाश के उतार में वे एक दूसरे के पास-पास आते जाते हैं, आपस में गुंथते हैं और उनके बीच नीलिमा अब नहीं दिखती; पर वे स्वयं भी आकाश जैसे ही आसमानी रंग के होते हैं – आलोक और गरमाहट में पगे हुए। क्षितिज का रंग हल्का नील कमल सा होता है और दिन भर नहीं बदलता, चारों ओर एक सा रहता है। कहीं भी कालिमा नहीं छाती, घटाएं नहीं उमड़तीं। बस कहीं-कहीं ही आकाश धरती की ओर आसमानी हाथ बढ़ा देता है: यह झीनी बरखा है। सांझ घिरते न घिरते ये बादल विलीन हो जाते हैं। धुएं जैसे अनिश्चित आकार के, कालापन लिए उनके अंतिम अवशेष डूबते सूरज के सामने रूई के गुलाबी ढेरों से उतर आते हैं। जिस शांत भाव से सूर्य उदय हुआ था, उसी शांत भाव से वह अस्ताचल को चला जाता है। और वहां झुटपुटे की चादर ओढ़ती धरती के ऊपर कुछ देर तक लालिमा छाई रहती है। संभाल कर ले जाई जा रही दीप शिखा की भांति सांझ का तारा टिमटिमा उठता है। ऐसे दिनों में सब रंग कोमल होते हैं, उजले किंतु चटकीले नहीं। चारों ओर हृदयस्पर्शी मृदुता का वातावरण होता है। ऐसे दिनों में गर्मी काफ़ी तेज़ होती है, कभी-कभी तो खेतों की ढुलवानों पर से भाप सी उठती दिखती है; पर हवा इस तपस को उड़ा ले जाती है और स्थिर मौसम के पक्के चिह्न – धूल के बगूले ऊंचे सफ़ेद सतूनों से खेतों को पार करते सड़कों पर उड़ते जाते हैं। स्वच्छ खुश्क हवा में चिरायते, काटी हुई रई और कूटू की गंध मिली होती है। रात घिरने से दो घड़ी पहले तक भी नमी का एहसास नहीं होता। किसान फ़सल काटने को ऐसे ही मौसम की कामना करते हैं।

ठीक ऐसे ही दिन तूला प्रांत के चेर्न ज़िले में मैं जंगली मुर्गों का शिकार करने निकला था। मैंने काफ़ी सारी चिड़ियां मार ली थीं और मेरा भरा हुआ झोला बेरहमी से कंधे में गड़ रहा था। सांझ ढल रही थी, अस्त हो गए सूरज की किरणें आकाश को आलोकित नहीं कर रही थीं, पर तो भी वह उजला था, गोधूलि की शीतल आभा में धुंधलका गहराता हुआ बढ़ रहा था। तब कहीं जाकर मैंने घर लौटने का निश्चय किया। तेज़-तेज़ क़दम भरते हुए मैंने झाड़ियों का मैदान पार किया, टीले पर चढ़ गया, लेकिन मेरी आशा के विपरीत न तो दाईं ओर बलूत कुंज था, न दूर कहीं छोटा सा सफ़ेद गिरजा

नज़र आ रहा था, यहां तो बिल्कुल ही दूसरी, अनजान जगह थी। नीचे एक संकरी घाटी फैली हुई थी और बिल्कुल सामने तेज़ ढलान पर एस्प वृक्षों का घना झुरमुट चला गया था। मैं हैरान-परेशान सा रुक गया, इधर-उधर नज़र दौड़ाई। "धत् तेरे की! मैं तो बिल्कुल दूसरी जगह पहुंच गया: ज्यादा दाईं ओर को चला आया," मैंने सोचा। अपनी ग़ल्ती पर चकित होता हुआ मैं फुर्ती से टीले पर से उतर गया। तत्क्षण अप्रिय सी, थिर सीलन ने मुझे घेर लिया, मानो मैं किसी तहख़ाने में उतर आया था। घाटी के तल पर घनी ऊंची घास की एकदम गीली, सफ़ेद, सपाट चादर बिछी हुई थी, उस पर चलते हुए मन कांपता था। मैंने जल्दी-जल्दी घाटी पार की और बाएं घूमता हुआ एस्प वन के बगल-बगल चलने लगा। एस्पों के ऊंघते शिखरों के ऊपर चमगादड़ उड़ने लगे थे। अस्पष्ट से निर्मल आकाश में फरफराते वे रहस्यमयी जीव से लगते थे। आकाश में काफ़ी ऊंचे एक छोटा बाज़ अपने घोंसले पर लौटने की जल्दी में तेज़ी से सीधा उड़ता चला गया। मैं सोच रहा था: "बस, उस छोर तक पहुंचते ही आगे सड़क होगी। हां, पांच फ़र्लांग का चक्कर तो लग ही गया!"

आख़िर मैं जंगल के उस छोर तक पहुंच गया, पर वहां कोई सड़क न थी। मेरे सामने नीची-नीची झाड़ियां फैली हुई थीं और उनके पीछे दूर-दूर तक वीरान खेत दिख रहा था। मैं फिर रुक गया। "क्या माजरा है?.. आख़िर कहां आ पहुंचा मैं?" मैं यह याद करने लगा कि मैं दिन भर किधर-किधर गया था। "अरे हां, ये तो पराख़िनो की झाड़ियां हैं।" आख़िर मेरे मुंह से निकला। "और वह वहां सिन्देयेव कुंज होना चाहिए... कैसे आ गया मैं इतनी दूर?.. अजीब बात है! अब फिर दाएं चलना चाहिए।"

मैं झाड़ियों के बीच से दाईं ओर को बढ़ने लगा। उधर रात घिरती आ रही थी, काली घटा की तरह बढ़ती जा रही थी। लगता था कि सांझ की धुंध के साथ चारों ओर से अंधेरा उठ रहा है और ऊपर से भी छितर रहा है। मैं किसी पगडंडी पर जा पहुंचा। पगडंडी पर घास उग आई थी, न जाने कब से कोई उस पर नहीं चला था। ध्यान से आगे देखता हुआ मैं उस पर चलने लगा। चारों ओर सब कुछ तेज़ी से काला पड़ता जा रहा था और निस्तब्धता छाती जा रही थी – बस कभी-कभार कोई बटेर चहक उठता था। अपने कोमल

पंखों पर निश्शब्द उड़ता कोई निशाचर पंछी मुझसे टकराता-टकराता बचा और सहमा सा एक ओर को अंधेरे में ग़ोता लगा गया। मैंने झाड़ियों का मैदान पार कर लिया और खेत में मेड़-मेड़ चलने लगा। अब दूर की चीज़ें मुश्किल से ही नज़र आ रही थीं : चारों ओर धुंधला सफ़ेद खेत फैला हुआ था। उसके पार उमड़ता-घुमड़ता अंधेरा पल-पल बढ़ता जा रहा था। थिर हो चली हवा में मेरे क़दमों की दबी-दबी आवाज़ गूंज रही थी। धूमिल पड़ गया आकाश फिर से नीला हो रहा था, पर यह रात की नीलिमा थी। तारे छिटक गए, झिलमिलाने लगे।

जिसे मैं कुंज समझे था, वह काला, गोलाकार टीला निकला। "आखिर कहां आ गया मैं ?" मैंने फिर से कहा, तीसरी बार थमा और प्रश्न भरी दृष्टि से अपने अंग्रेज़ी नस्ल के पीले-चितकबरे कुत्ते दिआन्का की ओर देखा, जो बिलाशक सभी चौपायों में सबसे अक्लमंद है। पर सबसे अक्लमंद कुत्ते ने बस दुम हिला दी, अपनी थकी-थकी आंखें झपकाईं और कोई काम की सलाह नहीं दी। मुझे उसके सामने शर्म आई और मैं यकायक आगे बढ़ चला, मानो सहसा मुझे यह पता चल गया हो कि किधर जाना चाहिए। टीले का चक्कर काटकर उसे पार किया और एक घाटी में जा पहुंचा, जो अधिक गहरी न थी। यहां चारों ओर ज़मीन जुती हुई थी। मुझे एक अजीब सी अनुभूति हुई।

यह घाटी विशाल कड़ाहे की शक्ल की थी, हल्की सी ढलान नीचे को चली गई थी। और नीचे तलहटी में कुछ बड़े-बड़े सफ़ेद पत्थर सीधे-सतर खड़े थे, लगता था मानो वे किसी गुप्त मंत्रणा के लिए वहां रेंग आए हों। घाटी में सब कुछ इतना अचल और मूक था, इतना सपाट था, उसके ऊपर आसमान ऐसा मनहूस सा लगता था कि मेरा कलेजा बैठ गया। पत्थरों के बीच कोई जीव धीमी सी, दयनीय आवाज़ में चिचियाया। मैंने जल्दी-जल्दी टीले पर लौटने की की। अभी तक मैंने घर का रास्ता ढूंढ़ लेने की आशा न खोई थी, पर अब मैं समझ गया कि बिल्कुल भटक गया हूं। चारों ओर घने अंधकार में डूबी जगहों को पहचानने की कोई कोशिश न करते हुए मैं तारों को देखता नाक की सीध में अललटप्पू चल दिया ... कोई आधे घंटे तक मैं यों ही मुश्किल से पैर घसीटता चलता रहा। लगता था कि पहले कभी भी मैं ऐसे निर्जन इलाक़े

में नहीं आया ; कहीं कोई आग नहीं टिमटिमा रही थी, कोई आवाज़ नहीं सुनाई दे रही थी। एक के बाद एक हल्की ढलान वाले टीले आ रहे थे, खेतों के सिलसिले का कोई अंत न था, झाड़ियां अचानक ऐन नाक के सामने ज़मीन में से निकल पड़ती थीं। मैं चलता जा रहा था और सोच रहा था कि बस अब कहीं लेटकर रात काट लूं, पर तभी मैंने अपने आप को एक अथाह गर्त के किनारे पाया।

आगे बढ़ा पांव मैंने जल्दी से पीछे हटा लिया। रात के प्रायः अभेद्य अंधकार में मुझे बहुत नीचे एक विशाल मैदान दिखा। चौड़ी नदी ने उसे अर्द्धवृत्त में घेर रखा था, जो मेरे से दूर को जा रहा था। जब-तब नज़रों से टकराती नदी की अस्पष्ट सी, फ़ौलादी झिलमिल से उसके बहाव का आभास हो रहा था। जिस टीले पर मैं खड़ा था वह एकदम सीधी कगार के रूप में नीचे चला गया था। घनी नीली रिक्तता में टीले की विशाल काली आकृति अलग से दिख रही थी। मेरे ठीक नीचे कगार और मैदान के बीच एक कोना सा बन गया था। यहां नदी प्रायः थिर ही थी, काले दर्पण सी। टीले की खड़ी ढलान की ओट में नदी के पास एक दूसरे के निकट ही दो अलावों की लाल लपटें उठ रही थीं, धुआं छोड़ रही थीं। उनके इर्द-गिर्द लोग हिलडुल रहे थे, परछाइयां मंडरा रही थीं, कभी-कभी छोटे से—घुंघराले बालों वाले सिर का अगला हिस्सा चमक उठता था।

अब मैं पहचान गया कि मैं कहां आ भटका हूं। यह चरागाह हमारे इलाक़े में 'बेझिन चरागाह' के नाम से जानी जाती है। पर घर लौटने की अब हिम्मत न रही थी, वह भी रात में। थकावट के मारे खड़ा न हुआ जा रहा था। मैंने तय किया कि अलावों के पास जाता हूं और इन लोगों के साथ बची-खुची रात काट लेता हूं। मेरा ख़्याल था कि ये लोग मवेशियों को हाट में ले जानेवाले चरवाहे हैं। मैं सही-सलामत नीचे उतर गया, पर जिस आख़िरी टहनी को मैंने पकड़ रखा था, उसे हाथ से छोड़ भी न पाया था कि दो बड़े-बड़े, झबरीले, सफ़ेद कुत्ते ग़ुस्से से भौंकते हुए मेरी ओर लपके। अलावों के पास से बच्चों की खनकती आवाज़ें आईं। दो-तीन लड़के तुरंत उठ खड़े हुए। उन्होंने चिल्लाकर पूछा : "कौन है?", मैंने जवाब दिया और वे दौड़े-दौड़े मेरी ओर आए, कुत्तों

को हटा लिया, जो मेरे दिआन्का को आया देखकर ख़ास तौर पर हैरान थे। मैं लड़कों के पास चला गया।

अलाव के इर्द-गिर्द बैठे लोगों को चरवाहा समझना मेरी भूल थी। ये तो पड़ोस के गांव के लड़के थे, जो घोड़ों के झुंड की रखवाली कर रहे थे। गर्मियों के दिनों में हमारे यहां घोड़ों को रात में ही चरागाहों में छोड़ा जाता है: दिन में मक्खियां और कुकुरमाछियां उन्हें तंग कर मारें। गोधूलि की वेला में घोड़ों को चरागाह में ले जाना और प्रभात वेला में वापिस हांक लाना – किसान बच्चों के लिए इससे बढ़कर ख़ुशी का काम और कोई नहीं। नंगे सिर, भेड़ की खाल के पुराने कोट कसे वे मरियल सी, पर तेज़ तर्रार घोड़ों पर सवारी गांठते हैं। चिल्लाते हुए, हू-हा करते, टांगें-बाहें हिलाते, ऊंचे-ऊंचे उछलते वे घोड़ों को दौड़ा ले जाते हैं, खिलखिलाकर हंसते जाते हैं। सड़क पर अपने पीछे धूल के पीले सतूने छोड़ते जाते हैं; घोड़ों की टापें दूर तक सुनाई देती हैं, कनौतियां खड़ी किए वे दौड़ते जाते हैं; आगे-आगे अपनी दुम हवा में उठाए निरंतर चाल बदलता कोई झबरा सुरंग घोड़ा दौड़ता जाता है, जिसकी अयाल में गोखरू उलझे होते हैं।

मैंने लड़कों को बताया कि मैं भटक गया हूं और उनके पास बैठ गया। उन्होंने मुझसे पूछा कि मैं कहां से आया हूं, फिर चुप हो गए, एक ओर को हट गए। हमने कुछ देर बातें कीं। मैं एक बूची झाड़ी के नीचे लेट गया और इधर-उधर देखने लगा। बड़ा ही मनमोहक दृश्य था: अलावों के इर्द-गिर्द लाल दमक का घेरा थरथरा रहा था और अंधेरे से टकराकर मानो ठिठक जाता था; कभी-कभार कोई लपट तेज़ हो उठती और इस घेरे की परिधि के बाहर प्रकाश की द्रुत कौंध फैल जाती; कोई अग्नि जिह्वा पतली-पतली सूखी टहनियों को चाटती और तुरंत ही विलीन हो जाती; और कभी टेढ़ी-मेढ़ी लंबी-लंबी परछाइयां अलावों तक बढ़ आतीं: प्रकाश अंधकार से जूझ रहा था। कभी-कभी लौ धीमी पड़ जाती और प्रकाश का घेरा सिकुड़ जाता, आगे बढ़ आए अंधकार में से सहसा किसी घोड़े का सिर – धारीदार कुम्मैत या नुकरा, भावहीन आंखें गाड़कर हमारी ओर देखता, लंबी घास तेज़ी से चरता और फिर से झुककर तुरंत ही ओझल हो जाता। बस घोड़े के घास चरने और फुफकारने की ही

आवाज़ सुनाई देती रहती। उजली जगह में से यह देखना कठिन होता है कि अंधकार में क्या हो रहा है, अतः लगता था कि आसपास सब कुछ काले परदे में छिपा हुआ है। हां, दूर, क्षितिज के पास टीले और जंगल धुंधले-धुंधले धब्बों के रूप में दिख रहे थे। काला, तारों से भरा, ओर-छोर विहीन आकाश अपनी सारी रहस्यमय गरिमा में हमारे सिरों के ऊपर छाया हुआ था। रूस की गर्मियों की रात की विशिष्ट, अभिभूत कर देनेवाली और ताज़गी भरी सुगंध फेफड़ों में भर रही थी और उससे हृदय में मीठी कसक उठ रही थी। चारों ओर कहीं कोई ध्वनि, कोई स्वर न था। बस कभी-कभार ही पास की नदी में किसी बड़ी मछली के उछलने से ज़ोर से छपछपाहट होती और दौड़ आई लहर से तट के सरकंडों में हुई हल्की सी आहट सुनाई देती ... सिर्फ़ अलाव ही धीरे-धीरे तड़-तड़ करते जल रहे थे।

लड़के इन अलावों के इर्द-गिर्द ही बैठे थे और वे दो कुत्ते भी बैठे थे, जो मुझे काट खाने को इतने उतावले हो उठे थे। काफ़ी देर तक वे मेरी उपस्थिति को शांति से स्वीकार नहीं कर पा रहे थे और उनींदे से आंखें मिचमिचाते और तिरछी नज़रों से अलावों की ओर देखते हुए रह-रहकर गुर्रा उठते – मानो उनका असाधारण अभिमान उन्हें कचोटता। पहले वे गुर्राते रहे, फिर धीरे-धीरे किकियाने लगे, मानो इस बात पर खेद प्रकट कर रहे हों कि अपनी इच्छा पूरी नहीं कर सकते। कुल पांच लड़के थे वहां: फ़ेद्या, पव्लूशा, इल्यूशा, कोस्त्या और वान्या। (उनकी बातचीत से मुझे उनके नाम पता चले और अब मैं तुरंत ही पाठकों को उनसे परिचित कराना चाहता हूं।)

लड़कों में सबसे बड़ा था फ़ेद्या। वह लगभग चौदह बरस का लगता था। सुघड़ शरीर, सुंदर, किंतु कुछ छोटे-छोटे नाक-नक्श, सुनहरी घुंघराले बाल और होठों पर सदा छाई रहनेवाली मुस्कान, जिसमें प्रसन्नता भी थी और अन्यमनस्कता भी। उसके हाव-भाव से साफ़ लगता था कि वह किसी खाते-पीते घर का है और ज़रूरत से मजबूर होकर नहीं, बल्कि मौज करने यहां चरागाह में आया है। वह चटकीली छींट की, पीली गोटवाली कमीज़ पहने था। नया छोटा कोट उसने ओढ़ रखा था, जो उसके संकरे कंधों पर खिसक-खिसक जाता था। नीली सी पेटी में कंघा लटक रहा था। पिंडलियों तक ऊंचे बूट जो वह

पहने था, उसके अपने ही थे, उसके पिता के नहीं। दूसरे लड़के पव्लूशा के काले बाल उलझे-पुलझे थे, आंखें सुरमई, कल्ले चौड़े, चेहरा पीला सा, चेचक के दाग़ों से छलनी, बड़ा लेकिन अच्छे तराशवाला मुंह। कुल जमा उसका सिर काफ़ी बड़ा था, जैसा कि हमारे यहां कहा जाता है – हांडी जैसा, बदन ठिगना और बेढ़ब सा था। यह तो मानना पड़ेगा कि लड़का देखने में सुंदर नहीं था, पर फिर भी वह मुझे अच्छा लगा: वह एकदम सीधे देखता था और उसकी आंखों में बुद्धिमत्ता का भाव था। उसकी आवाज़ से भी शक्ति का आभास होता था। अपनी वेश-भूषा पर वह गर्व नहीं कर सकता था: घर की कती-बुनी कमीज़ और पैबंद लगी पतलून – यही था उसका सारा पहनावा। तीसरे बालक इल्यूशा का चेहरा ख़ासा मामूली सा था – लम्बूतरा, चुंधी सी आंखें, और तोते सी नाक। उसके चेहरे पर किसी ठस, चिड़चिड़ी बेचैनी की छाप थी। होंठ मिंचे हुए थे और उनमें ज़रा भी गति न थी, भौंहें भी सिकुड़ी की सिकुड़ी ही थीं – मानो अलाव से वह बराबर चुंधिया रहा हो। उसके हल्के पयाल के रंग के, प्राय: सफ़ेद से बालों की लटें चिपकी सी फ़ैल्ट टोपी के नीचे से जहां-नहां निकली हुई थीं। वह रह-रहकर दोनों हाथों से अपनी टोपी को कानों पर खींचता था। उसकी टांगों और पांवों पर मोज़ों की जगह कपड़े की चौड़ी पट्टियां लिपटी हुई थीं और उनके ऊपर वह छाल की जूतियां पहने था। मोटी डोरी तीन बार उसकी कमर पर लिपटी हुई थी और उसके काले रंग के झगले को *अच्छी तरह संभाले* हुए थी। पव्लूशा और वह देखने में बारह साल से ज़्यादा के नहीं लगते थे। चौथा, कोस्त्या कोई दस बरस का था। उसके विचारमग्न और उदास से चेहरे को देखकर मुझे कौतूहल हो रहा था। उसका सारा चेहरा छोटा सा, दुबला-पतला, नीचे को नुकीला था – गिलहरी जैसा; होंठ मुश्किल से नज़र आते थे; किंतु उसकी बड़ी-बड़ी काली आंखें और उनकी तरल चमक एक विचित्र सा प्रभाव डालती थीं। वे मानो कोई ऐसी बात कहना चाहती थीं, जिसे ज़बान, कम से कम उसकी ज़बान, शब्दों में व्यक्त करने में असमर्थ थी। वह नाटे कद और कमज़ोर बदन का था। कपड़े भी वह मामूली से ही पहने थे। आख़िरी लड़के वान्या पर तो पहले मेरी नज़र ही नहीं पड़ी: वह एक चौड़ी सी चटाई तले आराम से ज़मीन पर पड़ा हुआ था, कभी-कभार ही

वह अपना घुंघराले बालों वाला सिर चटाई के नीचे से बाहर निकालता था। इस लड़के की उम्र सात बरस से ज़्यादा न थी।

सो, मैं एक ओर को झाड़ी तले लेटा हुआ चुपके-चुपके लड़कों को देख रहा था। एक अलाव पर छोटा सा पतीला लटक रहा था, उसमें आलू उबल रहे थे। पव्लूशा उन पर नजर रख रहा था, घुटनों के बल खड़ा होकर वह उबलते पानी में खपची डालकर देख रहा था। फ़ेद्या कोहनी टेककर लेटा हुआ था, उसके कोट का दामन फैला हुआ था। इल्यूशा कोस्त्या के पास बैठा था और पहले की ही भांति भौंहें सिकोड़े हुए था। कोस्त्या सिर एक ओर को झुकाए कहीं दूर नज़रें गड़ाए हुए था। वान्या अपनी चटाई तले हिले-डुले बिना लेटा हुआ था। मैंने सोने का बहाना किया। धीरे-धीरे लड़कों की बातचीत का सिलसिला फिर से शुरू हो गया।

पहले उन्होंने कुछ इधर-उधर की बातें कीं, कल के काम की, घोड़ों की; और फिर सहसा फ़ेद्या ने मानो बीच में छूट गई बातचीत का सिलसिला फिर से पकड़ते हुए इल्यूशा से कहा:

"अच्छा तो, तूने घर-भुतने को देखा था?"

"नहीं देखा तो नहीं, वह दिखाई देता भी नहीं," इल्यूशा ने फटी-फटी, मरियल सी आवाज़ में जवाब दिया। उसका स्वर चेहरे के हाव-भाव से एकदम मेल खाता था। "हां, उसकी आवाज़ सुनी थी... सो भी मैंने अकेले ने नहीं।"

"कहां डेरा डाले है वह?" पव्लूशा ने पूछा।

"पुरानी मिल में।"

"अरे! तू क्या मिल में जाता है?"

"और नहीं तो क्या। मेरा भाई अव्यूश्का और मैं कागज़ चिकनाते हैं।"

"वाह रे, कामगार बन गया!"

"अच्छा तो कैसे तूने आवाज़ सुनी थी?" फ़ेद्या ने पूछा।

"अभी बताता हूं। हुआ यह कि अव्यूश्का और मैं, और वह फ्योदर मिख़ेयेव्स्की, और इवाश्का कसोइ, साथ में वह लाल टीले वाला इवाश्का भी, और इवाश्का सुख़ारूकव और दूसरे भी लड़के, बस पूरी पाली के ही लड़के थे हम; सो हमें मिल में रात काटनी पड़ी, काटनी तो क्या पड़ी, वह

हमारा मुखिया नज़ारव बोला कि भई लड़को कल काम बहुत है, तो तुम क्या बेकार अब घर जाओगे, मत जाओ। सो हम वहीं रुक गए। सब लेट गए पास-पास ही और तभी अव्यूरका कहने लगा कि भाइयो अगर कहीं यहां घर-भुतना आ गया तो?.. और बस उसके इतना कहने की देर थी कि हमारे ऊपर कोई चलने लगा, हम लोग तो नीचे की मंज़िल में लेटे हुए थे, और वह ऊपर डग नाप रहा था, जहां चक्के हैं। वह ऐसे टहल रहा था और तख़्ते तो बस उसके बोझ से सारे झुके जा रहे थे, चरमरा रहे थे; हमारे सिरों के ऊपर से होता हुआ वह गुज़र गया और अचानक चक्के पर ज़ोर से पानी गिरने लगा; चक्का खड़खड़ाया, खड़खड़ाया और लो चल दिया; और पानी के डट्टे तो बंद थे। हम हैरान: यह किसने डट्टे उठा दिए कि पानी बहने लगा। चक्का थोड़ी देर घूमा और फिर रुक गया। अब वह ऊपर के दरवाज़े की ओर चल दिया और ज़ीने से उतरने लगा, बड़े इत्मीनान से वह उतरता जाए, सीढ़ियां तो जैसे उसके बोझ से कराह उठीं... आख़िर वह हमारे दरवाज़े तक आ गया, थोड़ी देर खड़ा रहा, खड़ा रहा और फिर दरवाज़ा एकदम सारा का सारा खुल गया। हमारी तो बस सिट्टी-पिट्टी गुम! पर देखा तो कुछ है ही नहीं... और अचानक देखते क्या हैं कि एक टंकी का जाल हिलने लगा, फिर वह उठा, उठता गया, फिर नीचे हो गया, हवा में यों घूमा जैसे कोई उसे फटक रहा हो और फिर अपनी जगह जा टिका। अब एक दूसरी टंकी के पास एक कांटा अपनी खूंटी से उतर गया और फिर खूंटी पर जा लटका; फिर मानो कोई दरवाज़े की ओर चल दिया और अचानक ऐसे ज़ोर से कोई खांसा-खंखारा, बड़ी भारी-भारी आवाज़ में। हम सब तो बस एक दूसरे से चिपक गए, सिर दुबकाने लगे... तौबा, कितना डर गए थे हम!"

"ओहो!" पव्लूशा बोला। "पर वह खांसा क्यों?"

"पता नहीं, शायद सीलन थी, इसलिए।"

थोड़ी देर तक सब चुप रहे।

"क्यों, आलू उबल गए क्या?" फ़ेद्या ने पूछा।

पव्लूशा ने छपटी से छूकर देखे।

"नहीं, अभी कच्चे हैं... बाप रे, कैसे जोर का छपाका हुआ," नदी

की ओर मुंह मोड़कर वह बोला, "ज़रूर कोई बड़ी मछली है... वह देखो, तारा टूटा!"

"लो, मैं एक मज़ेदार क़िस्सा सुनाता हूं," कोस्त्या अपनी पतली सी आवाज़ में बोलने लगा। "सुनो भाइयो, अभी उस दिन बापू ने मेरे सामने यह बात सुनाई थी।"

"अच्छा तो सुना," फ़ेद्या ने मानो आज्ञा देते हुए कहा।

"गव्रीला को तो तुम जानते ही हो, वही जो गांव में बढ़ई है।"

"हां, जानते हैं।"

"पता है क्यों वह हमेशा इतना उदास, खोया-खोया रहता है, कभी हंसता-बोलता नहीं, पता है? सुनो, मैं बताता हूं: बापू बता रहे थे कि एक दिन वह गया जी जंगल में, जंगली अखरोट बीनने। गया जो जंगल में, तो वहां रास्ता भूल गया; न जाने कहां जा पहुंचा, कहां भटक गया। इधर भी जाए, उधर भी जाए, पर नहीं, कहीं रास्ता मिले ही नहीं। ऊपर से रात घिरती आ रही थी। लो जी, आखिर वह एक पेड़ तले बैठ गया। सोचने लगा कि चलो, सुबह होने तक यहीं बैठ लेता हूं। सो जी, वह बैठा-बैठा ऊंघने लगा और सो गया। अचानक सुनता क्या है कि कोई उसे पुकार रहा है। इधर-उधर देखा पर कोई है ही नहीं। वह फिर ऊंघने लगा, फिर वही पुकार सुनाई दी। वह फिर ताकने लगा, आखिर जी देखता क्या है कि उसके सामने पेड़ की डाली पर जलपरी बैठी है, झूलती जा रही है, उसे बुला रही है और ख़ुद हंसी से लोट-पोट हो रही है... अब, भैया जी, रात तो चांदनी थी, ऐसी चांदनी कि बस एक-एक पत्ता दिखाई देता था। सो, लो जी वह उसको बुलाए जाए, और ख़ुद ऐसी गोरी-चिट्टी डाली पर बैठी हुई थी, जैसे डेस मछली या रोच या फिर वो कार्प मछली भी यों चांदी सी चमकती है... अब, भैया जी, गव्रीला बढ़ई के होश हवास गुम, उधर वो जलपरी उसे इशारे किए जाए, हंस-हंसकर बुलाती जाए। गव्रीला तो उठकर चल ही दिया था, पर यह समझो कि भगवान ने उसके दिल में डाल दी: उसने अपनी छाती पर सलीब का निशान बना ही लिया... पता है कितनी मुश्किल हुई थी उसे ऐसा करने में, वह कह रहा था: हाथ तो जैसे पत्थर का हो गया था, उठता ही न था। ओफ़, कमबख़्त,

चल!.. बस, भैया जी, जैसे ही उसने सलीब का निशान बनाया जलपरी का हंसना बंद, और लगी वह फूट-फूटकर रोने... रोती जाए, रोती जाए, बालों से आंखें पोंछती जाए, और बाल तो उसके हरे-हरे थे, जैसे तुम्हारा सन। सो जी, गव्रीला उसे देखता रहा, देखता रहा और आखिर पूछ बैठा: 'अरी, जलपरी, तू रोती क्यों है?' जलपरी ने भी उसे तुरंत जवाब दिया, बोली: 'अगर तू सलीब का निशान न बनाता, तो आख़िरी दिन तक मौज से मेरे साथ रहता; रोना मुझे इसी बात का है, इसीलिए मैं दुखी हूं कि तूने सलीब का निशान बनाया, पर मैं अकेली दुखी नहीं रहूंगी; जा, तू भी मरते दम तक अब दुखी रहेगा।' लो जी, बस इतना कहकर वह तो ग़ायब हो गई और गव्रीला को भी फ़ौरन घर का रास्ता समझ में आ गया... बस, तभी से वह इतना उदास-उदास रहने लगा है।"

"हुं, देखो तो!" कुछ देर की ख़ामोशी के बाद फ़ेद्या बोला। "कैसे कोई यह भुतनी-वुतनी ईसाई आत्मा को भ्रस्ट कर सकती है – आख़िर गव्रीला ने उसका कहना तो माना नहीं था?"

"बस, ऐसे ही होता है।" कोस्त्या बोला। "गव्रीला भी कहे था कि उसकी आवाज़ इतनी पतली और दयनीय थी जैसे कोई मेंढकी हो।"

"तेरे बापू ने ख़ुद यह बात सुनाई थी क्या?" फ़ेद्या पूछे जा रहा था।

"हां। मैं बिस्तर में लेटा था, सब कुछ सुन रहा था।"

"गज़ब की बात है! उसे भला काहे की उदासी!.. हां, भई, ज़रूर वह जलपरी को भा गया होगा, तभी तो वह उसे बुला रही थी।"

"अजी हां, भा गया!" इल्यूशा बोल पड़ा। "ज़रूर भाएगा! वह तो उसे गुदगुदाकर मार डालना चाहती थी, समझे। इन जलपरियों का काम ही यही है।"

"यहां भी तो जलपरियां होंगी," फ़ेद्या ने कहा।

"नहीं, यह जगह साफ़ है," कोस्त्या ने जवाब दिया। "बस यह नदी ही पास है, और तो कुछ नहीं।"

सब चुप हो गए। अचानक कहीं दूर सुदीर्घ, बिल्कुल विलाप जैसी चीख गूंजी। यह रात्रि की उन रहस्यमयी ध्वनियों में से एक थी, जो गहन नीरवता

में सहसा उत्पन्न हो जाती हैं, हवा में उठती हैं, गुंजायमान होती रहती हैं और फिर धीरे-धीरे विलीन होती हुई दूर चली जाती हैं। कान लगाएं तो लगता है कोई आवाज़ नहीं है, पर एक हल्की सी गूंज गूंजती रहती है।

ऐसा लगता था मानो ऐन आसमान के पास किसी ने बहुत ही लंबी चीख छोड़ी और फिर जंगल में कोई उसके जवाब में तीखी आवाज़ में खिलखिलाकर हंसा और नदी के वक्ष पर सरसरी सी फुफकार बढ़ गई। लड़कों ने एक दूसरे की ओर देखा, सिहर उठे...

"ईसा हमारे साथ हैं!" इल्यूशा बुदबुदाया।

"वाह रे, कबूतरो!" पव्लूशा चिल्लाया। "क्यों कांप उठे? देखो, आलू उबल गए।" सब लड़के पतीले के पास आ गए और गरम-गरम भाप छोड़ते आलू खाने लगे; सिर्फ़ वान्या ही हिला-डुला नहीं। "अरे, खाएगा नहीं क्या?" पव्लूशा ने पूछा।

पर वह अपनी चटाई के नीचे से नहीं निकला। पतीला जल्दी ही खाली हो गया।

"अच्छा, तुमने सुना, अभी उस दिन हमारे यहां वर्नावित्सी में क्या हुआ?" इल्यूशा ने बात छेड़ी।

"बांध के पास?" फ़ेद्या ने पूछा।

"हां, हां, वहीं, टूटे बांध के पास। वह है असली भुतहा जगह, और इतनी वीरान। चारों ओर खड्ड, गड्ढे, निचानें हैं और इतने सांप हैं वहां..."

"अच्छा, बता तो क्या हुआ वहां?"

"सुनो, क्या हुआ वहां। तुझे फ़ेद्या शायद पता नहीं, पर वहां एक आदमी डूब गया था, बहुत पहले जब पानी गहरा था। तो उसकी क़ब्र भी वहीं पर है। वैसे तो अब क़ब्र बस ज़रा सी ही दिखती है, एक ढूह सा ही रह गया है... तो हुआ यह कि कुछ दिन पहले कारिंदे ने येर्मील शिकारिये को बुलाया। वह येर्मील है न, जो शिकारी कुत्तों को पालता है। कुत्ते तो उसके सब मर गए हैं, पता नहीं क्यों उसके पास रहते ही नहीं, कभी नहीं रहे, वैसे काम वह अपना ख़ूब जानता है। अच्छा तो कारिंदे ने येर्मील को बुलाया और बोला कि जा डाक ले आ। हमारे यहां हमेशा येर्मील डाक लेने जाता है। सो येर्मील शहर

चला गया, बस वहां उसने कुछ देर-वेर कर दी, वापस जब चला, तो पिए हुए था। घोड़े पर वह आ रहा था, रात पड़ गई, चांदनी रात... तो आया येर्मील बांध पर से, बस ऐसा रास्ता निकला उसका। लो जी, चला आ रहा येर्मील शिकारिया और देखता क्या है कि जहां वो क़ब्र है न, वहीं ढूह पर एक मेमना टहल रहा है – ऐसा घुंघराले रेशों वाला, सफ़ेद-सफ़ेद। सो येर्मील ने सोचा क्यों न, मैं इसे उठा लूं। क्या यहां बेकार जाएगा। बस वह घोड़े से उतरा और मेमने को गोद में उठा लिया। मेमना भी चुपके से गोद में आ गया। बस उसे उठाकर येर्मील घोड़े की ओर चल दिया, और घोड़ा लगा थूथनी फेरने, फुफकारने; पर ख़ैर उसने घोड़े को फटकारा और मेमने को लेकर उस पर सवार हो गया, आगे चल दिया। मेमने को उसने अपने सामने रखा हुआ था। वह मेमने की ओर देखे और मेमना भी सीधा उसकी आंखों में आंखें डालकर देखता जाए। बस डर गया जी येर्मील शिकारिया: याद नहीं पड़ता कि कभी कोई मेमना यों ताकता हो; पर ख़ैर कोई बात नहीं; वह मेमने को सहलाने लगा, बोला: 'पुच-पुच-पुच!' लो जी मेमने ने भी दांत निकाले और बोल पड़ा: 'पुच-पुच-पुच'...

कहानी कहनेवाले के मुंह से यह आख़िरी शब्द निकला भी न था कि सहसा दोनों कुत्ते एकबारगी उठ खड़े हुए, ज़ोर-ज़ोर से भौंकते हुए अलाव से दूर लपके और अंधेरे में ओझल हो गए। सब लड़के डर गए, वान्या झट से अपनी चटाई तले से निकल आया, पव्लूशा चिल्लाता हुआ कुत्तों के पीछे दौड़ा। उनके भौंकने की आवाज़ दूर होती जा रही थी... बौखला उठे घोड़ों के झुंड की बेचैनी भरी भगदड़ की आवाज आई। पव्लूशा ज़ोर से चिल्लाया: "भूरे! भूचका!" कुछ क्षण बाद कुत्तों का भौंकना बंद हो गया; पव्लूशा की आवाज़ अब दूर से आ रही थी... कुछ और क्षण बीते; लड़के हैरान-परेशान से एक दूसरे की ओर देख रहे थे, मानो यह प्रतीक्षा करते हुए कि क्या होगा... सहसा तेज़ी से दौड़ते घोड़े की टापें सुनाई दीं, घोड़ा अलाव के बिल्कुल पास ही झटके से रुक गया, उसका अयाल पकड़कर पव्लूशा फुर्ती से नीचे कूद पड़ा। दोनों कुत्ते प्रकाश के घेरे में उछल आए और तुरंत ही अपनी लाल-लाल जीभें बाहर निकाले बैठ गए।

"क्या हुआ? क्या था?" लड़कों ने पूछा।

"कुछ नहीं," पावेल ने जवाब दिया और घोड़े की ओर हाथ हिलाया। "ऐसे ही कुत्तों को कुछ खटका हुआ होगा। मैंने सोचा था, भेड़िया आ गया," लापरवाही से उसने बात पूरी की। वह पूरी छाती फुलाकर सांस ले रहा था।

मैं बरबस विमुग्ध सा पव्लूशा को देखने लगा। इस क्षण वह बहुत अच्छा लग रहा था। उसका असुंदर मुखड़ा घोड़ा दौड़ाने से दमक उठा था और उससे बहादुरी और दृढ़ता झलकती थीं। हाथ में एक संटी तक भी लिए बिना, रात को वह अकेले ही, बेझिझक भेड़िये का सामने करने लपका था। "कितना प्यारा लड़का है!" उसे देखते हुए मैं सोच रहा था।

"देखे हैं क्या यहां भेड़िए?" डरपोक कोस्त्या ने पूछा।

"यहां हमेशा बहुत होते हैं," पव्लूशा ने जवाब दिया। "पर वे तो जाड़ों में ही तंग करते हैं।"

वह फिर से अलाव के पास बैठ गया। ज़मीन पर बैठते हुए उसने एक कुत्ते के झबरीले सिर पर हाथ रख लिया। कुत्ता खुश हो गया, बड़ी देर तक उसने सिर नहीं घुमाया और तिरछी नज़र से कृतज्ञता और गर्व के साथ पव्लूशा को देखता रहा।

वान्या फिर से चटाई के नीचे दुबक गया।

"हां तो, इल्यूशा, कैसी डरावनी बातें तू सुना रहा था," फिर से फ़ेद्या ने बातों का सिलसिला शुरू किया, सम्पन्न घर का होने के नाते उसे लड़कों की बातचीत में अगुवाई करनी पड़ती थी। (खुद वह कम ही बोलता था, मानो अपना मान बनाए रखने के लिए)। "इधर ये कुत्ते भी न जाने क्यों भौंक पड़े। सचमुच ही मैंने सुना था कि तुम्हारी वह जगह भूतों का अड्डा है।"

"वर्नावित्सी?.. और नहीं तो क्या। पूरा अड्डा ही है! कहते हैं वहां कई बार बूढ़े मालिक को देखा है—स्वर्गीय मालिक को। लंबा कफ़्तान पहने घूमता रहता है, आहें भरता जाता है और ज़मीन पर कुछ ढूंढ़ता रहता है। सुना है एक बार त्रफ़ीमिच बाबा ने उसे वहां देखा था, पूछने लगा: 'मालिक क्या ढूंढ़ रहे हैं?'"

"पूछा था उसने?" आश्चर्यचकित फ़ेद्या बीच में बोल उठा।

"हां, पूछा था।"

"बड़ा बहादुर है तब तो वह... तो क्या जवाब दिया उसने।"

"बोला, 'तोड़ बूटी* ढूंढ़ रहा हूं'। ऐसे खोखली आवाज़ में कहा: तोड़-बूटी। 'मालिक, तोड़-बूटी का क्या करोगे?' बोला: 'क़ब्र का बोझ नहीं सहा जाता। बाहर निकलना चाहता हूं, बाहर...'"

"ज़रा देखो तो थोड़ा जिया था क्या! और जीना चाहता है," फ़ेद्या ने कहा।

"क्या अजूबा है!" कोस्त्या बोला। "मैं तो सोचता था कि शनिवार वाले श्राद्ध को ही मरे हुओं को देखा जा सकता है।"

"मरे हुओं को तो कभी भी देखा जा सकता है," इल्यूशा ने विश्वासपूर्वक बात का सूत्र पकड़ा। मैं देख रहा था कि गांव के अंधविश्वासों के बारे में वही सबसे ज्यादा जानता है। "शनिवार वाले श्राद्ध को तो तुम जीते हुओं को भी देख सकते हो, उनको, जिनकी उस साल मरने की बारी है। बस रात को गिरजे के ओसारे पर बैठ जाओ और सड़क की ओर देखते रहो। बस जिनकी मरने की बारी है, वे आते दिखेंगे। हमारे यहां पिछले साल बुढ़िया उल्याना देखने गई थी।"

"देखा उसने किसी को?" कोस्त्या ने कौतूहल से पूछा।

"और नहीं तो क्या। पहले तो वह बड़ी देर बैठी रही। कुछ दिखा नहीं, न कुछ सुनाई दिया... बस लगता था कहीं एक कुत्ता रह-रहकर भौंक उठता था... अचानक देखती क्या है कि सड़क पर एक लड़का चला आ रहा है। सिर्फ़ एक कमीज़ पहने। वह ध्यान से देखने लगी – इवाश्का फ़ेदासेयेव चला आ रहा था..."

"वही, जो वसंत में मर गया?" फ़ेद्या ने बात काटी।

"हां, वही। चलता आ रहा था और सिर नहीं उठा रहा था... पर उल्याना बुढ़िया उसे पहचान गई... फिर देखती है कि एक बुढ़िया चली आ

---

* तोड़ बूटी – लोक विश्वास के अनुसार ऐसी बूटी, जिससे सभी कुंडे, ताले टूट जाते हैं। – सं०

रही है ... वह ध्यान से देखने लगी, देखती जाए, देखती जाए ... हे भगवान! – यह तो वह ख़ुद ही चली आ रही थी।"

"सच?" फ़ेद्या ने पूछा।

"हां, सचमुच वही थी।"

"पर वह तो अभी मरी नहीं?"

"तो क्या, साल तो अभी पूरा नहीं हुआ। उसकी हालत तो देखो: जैसे-तैसे प्राण अटके हुए हैं।"

फिर से सब शांत हो गए। पव्लूशा ने मुट्ठी भर सूखी टहनियां आग में डालीं। सहसा तेज़ हो उठी लौ में वे एकदम काली-काली दिखीं, तड़तड़ाने, धुआं छोड़ने और ऐंठने लगीं, जले सिरे ऊपर को उठ-उठ जाते थे। थरथराती हुई चमक चारों ओर फैली, ख़ास तौर पर ऊपर को। सहसा न जाने कहां से एक सफ़ेद कबूतर प्रकाश की परिधि में उड़ आया, सहमा-सहमा सा एक ही जगह पर मंडराया, गरम दमक से चमचमा उठा और पंख फड़फड़ाता हुआ ग़ायब हो गया।

"लगता है भटक गया है," पव्लूशा बोला, "अब उड़ता जाएगा, जब तक कहीं टकरा नहीं जाएगा। जहां टकराएगा बस वहीं रात काटेगा।"

"पव्लूशा, हो सकता है, यह कोई पवित्र आत्मा स्वर्ग को जा रही हो? हैं?" कोस्त्या ने कहा।

पाव्लूशा ने एक और मुट्ठी टहनियों की आग पर फेंकी।

"हो सकता है," आखिर उसने जवाब दिया।

"अच्छा, पव्लूशा, यह तो बता, तुम्हारे यहां शलामवो में भी वो दैवी चमत्कार* हुआ था?" फ़ेद्या ने फिर से बात छेड़ी।

"जब वो सूरज दिखाई देना बंद हो गया था? क्यों नहीं।"

"ख़ूब डर गए होगे तुम लोग तो?"

"हां, हम अकेले थोड़े ही डरे थे। हमारा मालिक भी हमें पहले से बताता रहा था कि हमें दैवी चमत्कार देखने को मिलेगा, पर जब अंधेरा हुआ, तो

---

* ग्रामीण लोग सूर्य ग्रहण को यही कहते थे। – ले०

सुना है, ख़ुद ही ऐसा डर गया कि पूछो मत और वो जो उसकी बावर्चिन है न, उसने तो जैसे ही अंधेरा हुआ उठाकर सारी हांडियां-वांडियां तोड़ डालीं। बोली: 'अब कौन खाएगा! क़यामत का दिन आ गया।' बस सारा खाना चूल्हे में गिर गया। हमारे गांव में तो भैया ऐसी-ऐसी अफ़वाहें फैल गईं कि अब सफ़ेद भेड़िये धरती को रौंदेंगे, लोगों को फाड़कर खा जाएंगे, आसमान से ख़ूनी पंछी झपटेंगे, और नहीं तो त्रीश्का ही प्रकट होगा।

"कौन त्रीश्का?" कोस्त्या ने पूछा।

"तुझे पता नहीं?" इल्यूशा बड़े जोश से बोल उठा। "अरे वाह रे, किस गांव का है तू, जो तुझे इतना भी नहीं पता कि त्रीश्का कौन है? घर के घोंघचू ही हैं तुम्हारे गांव वाले, निरे घोंघचू। अरे, त्रीश्का ऐसा अद्भुत आदमी होगा, जो एक दिन आएगा; और वो अद्भुत आदमी आएगा ऐसा कि कोई उसे पकड़ नहीं सकेगा और न उसका कुछ बिगाड़ा जा सकेगा: ऐसा अद्भुत आदमी होगा। अब मान लो किसान उसे पकड़ना चाहेंगे: डंडे, लाठियां लेके उसे पकड़ने निकलेंगे, घेर लेंगे, और वह उनकी आंखों में ऐसी धूल झोंकेगा कि वे एक दूसरे को ही मार डालेंगे। उसे मान लो, जेल में बंद कर देंगे, वह पीने को पानी मांगेगा, उसी में डुबकी लगा लेगा और बस ग़ायब हो जाएगा। उसे बेड़ियों, ज़ंजीरों में कस देंगे, वह ताली बजाएगा और वे सब वहीं गिर जाएंगी। बस यह त्रीश्का गांव-गांव, नगर-नगर घूमता फिरेगा और भैया रे, ऐसा धूर्त, ऐसा कुटिल होगा यह त्रीश्का कि सभी भले लोगों को, ईसा के भक्तों को भटकाएगा... और कोई उसका कुछ बिगाड़ नहीं सकेगा... ऐसा अद्भुत, धूर्त आदमी होगा वह!"

"हां, ऐसा ही होगा वह," पव्लूशा ने धीर-गंभीर स्वर में अपनी बात जारी रखी। "बस उसी का इंतज़ार था हमारे यहां। बड़े-बड़े कह रहे थे कि जैसे ही वो दैवी चमत्कार लगेगा, तभी त्रीश्का आ पहुंचेगा। तो लो जी, चमत्कार भी हो गया। और सब लोग घरों से निकल आए, खेत में जमा हो गए, देखने लगे कि क्या होता है। हमारे यहां तो, तुम्हें पता ही है, जगह खुली है। अचानक देखते क्या हैं कि उधर टीले की ओर से कोई आदमी आ रहा है, ऐसा कमाल का, अजीबोग़रीब सिर उसका। सब चिल्ला पड़े: 'हाय

त्रीश्का आ गया! हाय त्रीश्का आ गया!' और भाग खड़े हुए! हमारे गांव का मुखिया नाले में जा कूदा, उसकी घरवाली फाटक में ही फंस गई, चीखने-चिल्लाने लगी, अपने कुत्ते को ही इतना डरा दिया कि वह जंजीर तोड़कर बाड़ के पार कूदा और दुम दबाकर जंगल में भाग गया। और वो कूज़्का का बाप है न, दराफ़ेइच, वह जई के खेत में दुबक गया, और लगा बटेर की तरह चीखने: 'शायद, पंछी पर तो हत्यारा हाथ न ही उठाए।' ओह ऐसी भगदड़ मची कि पूछो मत! आदमी वो हमारे गांव का ही था ववीला, जो लकड़ी के पीपे बनाता है। उसने मटका खरीदा था और खाली मटका सिर पर डाले आ रहा था।"

सब लड़के हंसने लगे और फिर पल भर को चुप हो गए, जैसा कि प्राय: खुली हवा में बतिया रहे लोगों के साथ होता है। मैंने चारों ओर नज़र दौड़ाई: भव्य रात थी; सांझ ढले की ओसीली ताज़गी की जगह अब मध्य रात्रि की खुश्क गरमाहट ने ले ली थी। नींद में डूबे खेतों पर रात का मुलायम परदा पड़ा हुआ था और उसके उठने में, प्रभात की पहली सरसराहट, पहली चहक होने में, ओस की पहली बूंदों की झिलमिलाहट होने में अभी काफ़ी देर थी। आकाश पर चांद नहीं था, उसके देर से निकलने के दिन थे। अनगिनत सुनहरे तारे टिमटिमाते हुए मंथर गति से आकाश गंगा की ओर बढ़ते प्रतीत होते थे। और सचमुच ही उन्हें निहारते हुए लगता था मानो हम स्वयं पृथ्वी की अंतहीन, भंवर सी गति का अनुभव कर रहे हों। सहसा नदी पर एक के बाद एक दो बार अजीब सी, दयनीय चीख गूंजी और फिर कुछ क्षण पश्चात दूर से आई...

कोस्त्या कांप उठा... "क्या है यह?"

"बगुला चीखा है," पव्लूशा ने शांत भाव से कहा।

"बगुला," कोस्त्या ने दोहराया। "पव्लूशा, कल शाम को मैंने क्या सुना था, शायद तुझे पता हो..."

"क्या सुना था तूने?"

"अभी बताता हूं। मैं कामेन्नया ग्रिदा से शाश्किनो जा रहा था; पहले तो मैं हेज़ल की झाड़ियों के झुरमुट में चलता रहा, फिर वो जो छोटी सी चरागाह है न उसमें चलने लगा, पता है, जहां वह खोह की ओर को रास्ता है,

वहां, तुझे पता होगा, एक बड़ा गड्ढा है, जिसमें वसंत में पिघली बर्फ़ का पानी भरा रहता है। गड्ढा सारा नरकट के झाड़-झंखाड़ से भरा है। बस इसी गड्ढे के पास से मैं जा रहा था कि भैया अचानक गड्ढे में कोई कराह उठा, ऐसी दर्द भरी आवाज़ थी: "आ-आ-ह – आ-आ-ह ..." मैं तो भैया रे बुरी तरह से डर गया: सांझ का वकत और वो आवाज़ ऐसी दर्दीली थी। लगता था, बस मैं ख़ुद भी रो पड़ूंगा। क्या हो सकता था यह? हैं?"

"इस गड्ढे में पार साल चोरों ने बनपाल अकीम को डुबो दिया था," पव्लूशा ने राय दी। "हो सकता है उसकी आत्मा बिलख रही हो ..."

"हे भगवान," कोस्त्या की बड़ी-बड़ी आंखें भय और विस्मय से और भी फैल गईं। "मुझे तो पता ही नहीं था कि अकीम को वहां डुबोया था; नहीं तो मैं डर के मारे मर ही जाता।"

"कहते हैं, ऐसे छोटे-छोटे मेंढक भी होते हैं," पव्लूशा ने अपनी बात जारी रखी। "वे भी बोलते हैं तो रोते लगते हैं।"

"मेंढक? नहीं, वो मेंढक नहीं थे ... मेंढक कैसे ... (नदी पर बगुले ने फिर चीत्कार किया।) ओफ़ कमबख़त!" कोस्त्या के मुंह से बरबस निकला। "जैसे बन-भुतना चीख रहा हो।"

"बन-भुतना नहीं चीखता, वह तो गूंगा है," इल्यूशा ने बात पकड़ी, "वह तो बस तालियां बजाता है ..."

"तुमने देखा है क्या बन-भुतने को?" फ़ेद्या ने चुटकी लेते हुए पूछा।

"नहीं, देखा नहीं। और भगवान न करे, कभी सामना हो। पर दूसरों ने देखा है। अभी थोड़े दिन पहले हमारे गांव के एक आदमी को उसने भटकाया था; बड़ी देर तक वह जंगल में भटकता रहा, बस एक ही मैदान के चक्कर काटता रहा ... मुश्किल से दिन चढ़े कहीं घर पहुंचा।"

"तो क्या, देखा था उसने?"

"हां, देखा था। कहता था, बहुत बड़ा है वह, अंधियाला, ऐसा चिथड़ों में लिपटा सा और पेड़ के पीछे छिपता जाता है, ठीक तरह से कुछ नहीं दिखता, जैसे कि बस चांदनी से छिप रहा हो और अपनी इत्ती बड़ी-बड़ी आंखें झपकाता जाता है, घूरता जाता है ..."

"ओह! थू!" थोड़ा कांपते और कंधे बिचकाते हुए फ़ेद्या ने दुतकारा।

"पता नहीं क्यों यह गंदगी धरती पर फैली हुई है?" पावेल ने कहा।

"देख, बुरा मत कह, कहीं सुन न ले," इल्यूशा बोला।

फिर से चुप्पी छा गई।

"देखो भाइयो, देखो," सहसा वान्या का बाल स्वर सुनाई दिया। "देखो तो भगवान के प्यारे-प्यारे तारों को, मधुमक्खियों से मंडरा रहे हैं।"

उसने चटाई के नीचे से अपना ताज़गी भरा मुखड़ा बाहर निकाला, मुट्ठी पर ठोड़ी रखी और धीरे-धीरे अपनी मृदु आंखें ऊपर उठाईं। सब लड़कों की आंखें आसमान की ओर उठ गईं और फिर देर तक वहीं टिकी रहीं।

"वान्या," फ़ेद्या दुलार से बोला, "तेरी बहन अन्यूत्का ठीक-ठाक है न?"

"हां, ठीक है," वान्या ने थोड़ा तुतलाते हुए जवाब दिया।

"उससे कहियो – हमारे यहां क्यों नहीं आती?"

"पता नहीं।"

"कह देना कि आया करे।"

"कह दूंगा।"

"उस से कहियो मैं उसे मिठाई दूंगा।"

"मुझे देगा?"

"तुझे भी दे दूंगा।"

वान्या ने एक उसांस भरी।

"नहीं, मुझे नहीं चाहिए। तुम उसे ही दे देना, वह इतनी भली है।"

वान्या ने फिर से अपना सिर ज़मीन पर टिका लिया। पव्लूशा खड़ा हो गया और ख़ाली पतीला उठाकर चल दिया।

"कहां चला?" फ़ेद्या ने पूछा।

"नदी पर, पानी लेने: प्यास लगी है।"

कुत्ते भी उठकर उसके पीछे चल दिए।

"देख, नदी में गिर मत जाइयो!" इल्यूशा ने चिल्लाकर कहा।

"गिरेगा क्यों?" फ़ेद्या बोला। "संभलकर रहेगा।"

"हुं, संभलकर रहेगा। कुछ भी हो सकता है: वह झुकेगा, पानी भरने

लगेगा और जल-भुतना उसका हाथ पकड़कर खींच लेगा। फिर लोग कहेंगे कि जी वह तो पानी में गिर गया... गिरा-विरा क्या? वो देखो सरकंडों में पहुंच गया," आहट सुनते हुए उसने कहा।

सचमुच ही सरकंडों में ऐसी सरसराहट हुई, जैसे कोई उन्हें हाथ से हटा रहा हो।

"अच्छा, क्या यह सच है कि अकुलीना बावली उसी दिन से हुई, जब वह पानी में गिरी थी?" कोस्त्या ने पूछा।

"हां, तभी से। देखो तो क्या हाल हो गया। सुना है, पहले बड़ी सुंदर थी। जल-भुतने ने उसका दिमाग़ ख़राब कर दिया। उसे यह उम्मीद नहीं होगी कि अकुलीना को इतनी जल्दी निकाल लेंगे। बस उसने उसे अपने यहां, नदी के तल पर, ख़राब कर दिया।"

(इस अकुलीना को मैंने अपनी आंखों कई बार देखा था। चीथड़ों में लिपटी, बेहद दुबली, कोयले सा काला चेहरा, आंखें एकदम भावशून्य, हर वक़्त खीसें निपोड़े वह कहीं सड़क पर घंटों एक ही जगह खड़ी रहती है, अपनी हड़ियल बांहें छाती पर बांधे और धीरे-धीरे पैर बदलती डोलती रहती है, जैसे पिंजड़े में बंद कोई जंगली जानवर हो। उसे कुछ भी कहो वह कुछ नहीं समझती, बस कभी-कभी ठहाके मारके हंसने लगती है।)

"सुना है," कोस्त्या कह रहा था, "अकुलीना इसीलिए नदी में जा कूदी थी कि उसके प्रेमी ने उसे धोखा दिया था।"

"हां, इसीलिए।"

"याद है, एक वास्या था?" कोस्त्या ने दुखद स्वर में कहा।

"कौन वास्या?" फ़ेद्या ने पूछा।

"वही, जो डूब गया था," कोस्त्या ने जवाब दिया। "इसी नदी में। कितना अच्छा लड़का था! ओह, कितना अच्छा! और मां उसकी, फ़ेक्लीस्ता, उसे कितना प्यार करती थी, अपने वास्या को! उसे जैसे पता था कि बेटे की पानी में ही मौत आएगी। गर्मियों में हम सब बच्चे नदी में नहाने जाते, तो वह भी हमारे साथ हो लेता, मां उसकी डर के मारे पीली पड़ जाती। दूसरी लुगाइयों को कुछ परवाह नहीं, वे अपने कपड़े धोने की लकड़ी की लंबी

चिलमचियां उठाए चली जातीं। पर, वो फ़ेक्लीस्ता चिलमची ज़मीन पर रख देती और पुकारने लगती : 'लौट आ, मेरे लाल! मत जा, मेरी आंखों के तारे!' भगवान जाने डूब भी कैसे गया। तट पर ही तो खेल रहा था, मां भी वहीं थी, कटी घास के ढेर लगा रही थी : अचानक उसने सुना कि कोई पानी में बुलबुले छोड़ रहा है, पलटकर देखा तो बस वास्या की टोपी ही पानी पर तैर रही थी। बस तभी से फ़ेक्लीस्ता की अकल मारी गई है। बेटा जहां डूबा था न, उसी जगह आकर लेट जाती है, और भैया रे, लेटकर बस वही गान छेड़ देती है, – याद है, वास्या वो गाना गाया करता था? – बस वही गान वह भी छेड़ती है और ख़ुद रोती जाती है, भगवान के आगे अपना दुखड़ा रोती है ..."

"लो, पव्लूशा आ रहा है," फ़ेद्या ने कहा।

पानी से भरा पतीला हाथ में लिए पव्लूशा अलाव के पास आया। थोड़ी देर चुप रहकर बोला :

"क्यों, भाइयो, मामला तो गड़बड़ है।"

"क्या हुआ?" कोस्त्या ने चट से पूछा।

"मैंने वास्या की आवाज़ सुनी है।"

सब एकदम सिहर उठे।

"अरे, अरे, यह क्या कहता है, तू?" कोस्त्या जल्दी-जल्दी बुदबुदाया।

"भगवान कसम। मैं पानी की ओर झुकने लगा, तभी सुनता क्या हूं, कोई वास्या की आवाज़ में मुझे पुकार रहा है और जैसे पानी के नीचे से आवाज़ आ रही है : 'पव्लूशा, ऐ पव्लूशा, इधर आ।' मैं तुरंत पीछे हट गया। हां, पानी भर लिया।"

"हे भगवान! हे भगवान!" लड़कों ने सलीब का निशान बनाते हुए कहा।

"यह तो जल-भुतने ने तुझे बुलाया होगा," फ़ेद्या ने कहा। "हम अभी-अभी वास्या की ही बातें कर रहे थे।"

"ओह, यह तो बुरा सगुन है," इल्यूशा ने धीरे-धीरे बोलते हुए कहा।

"कोई बात नहीं, हुआ करे," पव्लूशा ने दृढ़तापूर्वक कहा और बैठ गया। "जो भाग में लिखा है होकर रहेगा।"

लड़के शांत हो गए। पव्लूशा के शब्दों का उन पर गहरा असर पड़ा लगता था। वे मानो सोने की तैयारी करते हुए आग के सामने परसने लगे।

"अरे, यह क्या?" सहसा कोस्त्या ने उठकर पूछा।

पव्लूशा ने कान लगाकर सुना।

"चाहे उड़ रहे हैं, चहक रहे हैं।"

"कहां उड़े जा रहे हैं?"

"उन देशों को, जहां कहते हैं कभी जाड़ा नहीं पड़ता।"

"क्या ऐसे देश भी हैं?"

"हां, हैं।"

"दूर हैं?"

"बहुत दूर, गरम समुद्रों के पार।"

कोस्त्या ने उसांस भरी और आंखें मूंद लीं।

लड़कों के पास आए मुझे तीन घंटे हो चले थे। आख़िर चांद निकल आया था। मैं तो उसे तुरंत देख ही नहीं पाया: इतना छोटा और पतला था वह। चंद्र विहीन रात पहले की ही भांति राजसी वैभव के साथ फैली हुई थी... हां, अब कई तारे, जो थोड़ी देर पहले आकाश में बहुत ऊंचे दिख रहे थे, धरती के अंधेरे सिरे की ओर झुक रहे थे; चारों ओर पूर्ण नीरवता थी, जैसी कि केवल रात्रि के अंतिम पहर में ही होती है, सब कुछ गहरी, अटूट नींद में डूबा हुआ था, पौ फटने से पहले की नींद में। हवा में फैली गंधें अब क्षीण पड़ रही थीं, मानो फिर से नमी आती जा रही थी... गर्मियों की रातें कितनी छोटी होती हैं!.. बुझते अलाव के साथ-साथ लड़कों की बातचीत भी ख़त्म होती जा रही थी... कुत्ते तो ऊंघ ही रहे थे; तारों के झिलमिलाते मंद प्रकाश में जहां तक मुझे दीख पड़ता था, घोड़े भी सिर लटकाए सो रहे थे... अलस बेसुधी ने मुझे घेर लिया और मेरी आंख लग गई।

ताज़ी हवा का झोंका मेरे चेहरे को छूता हुआ बढ़ गया। मैंने आंखें खोलीं: पौ फट रही थी। ऊषा की लाली अभी कहीं नहीं छाई थी, पर पूरब में उजाला हो चला था: चारों ओर सब कुछ दिखने लगा, धुंधला-धुंधला ही, पर दिख रहा था। हल्का सुरमई आकाश उजला होता जा रहा था, उसमें ठंडा, नीला

रंग भरता जा रहा था। तारे कहीं टिमटिमाते और ओझल हो जाते, धरती का दामन गीला हो गया था, पत्तियों पर ओस थी। कहीं-कहीं से जीवन की ध्वनियां और स्वर आने लगे और प्रभात की बयार फरफराती हुई धरती पर बहने लगी। उसके मधुर स्पर्श से मेरे शरीर में हल्का सा मीठा-मीठा कंपन हुआ। मैं झटपट उठा और लड़कों के पास गया। धीमे-धीमे सुलगते अलाव के इर्द-गिर्द वे बेसुध सोए पड़े थे। केवल पव्लूशा ही आधा उठा और ध्यान से मेरी ओर देखने लगा।

मैंने सिर हिलाकर उससे विदा ली और नदी के किनारे-किनारे चल पड़ा। नदी से भाप उठ रही थी। मैं कोई डेढ़ मील ही गया हूंगा कि मेरे चारों ओर से – भीगी चरागाह में, और दूर, सामने – जंगल से जंगल तक फैले हरे-हरे टीलों पर, और पीछे – धूल भरी लंबी सड़क पर, झिलमिलाती, लाल झाड़ियों पर और झीने पड़ते कोहरे तले लज्जा से अपना नीला वक्ष उघाड़ती नदी पर नया आलोक बरसने लगा, पहले लाल, फिर रक्तिम और फिर सुनहरी... हर चीज़ स्पंदित हो रही थी, जाग रही थी, गा रही थी, कलरव कर रही थी, चहक रही थी। ओस की बड़ी-बड़ी बूंदें सर्वत्र हीरों सी चमक उठीं ; सामने से गिरजे के घंटे के सुस्पष्ट, मानो प्रभात की शीतलता से निखरे स्वर हवा में तैरते आए और फिर सहसा थकावट मिटा चुके घोड़ों का झुंड मेरे पास से गुज़र गया। मेरे परिचित लड़के ही उन्हें हांके लिए जा रहे थे।

मुझे खेदपूर्वक इतना और कहना पड़ रहा है कि उसी वर्ष पव्लूशा नहीं रहा। वह डूबा नहीं, घोड़े से गिरकर मर गया। दुख की बात है : लड़का बड़ा अच्छा था !